शिक्षा और रोजगार : घेरे के बाहर से एक परिदृश्य

विकास मणियार

मैंने हाल ही में गुजरात के एक गाँव में कुछ समय बिताया जिसमें लगभग सभी लोग राठवा नामक जनजाति के हैं। उस समुदाय के साथ बातचीत से पता लगा कि 'धन्धो' (एक गुजराती शब्द जिसका मोटे तौर पर अर्थ है व्यवसाय) ही वह कारण है जिसकी वजह से वे अपने बच्चों को विद्यालय भेजना चाहते हैं। 'धन्धो' एक ऐसा शब्द है जिसका मतलब नौकरी करना (सार्वजनिक या निजी) या छोटे व्यवसाय करके अपने लिए रोजगार खुद पैदा करना हो सकता है। जब मैं इस बात की गहराई में गया तो स्पष्ट हुआ कि ये लोग नौकरी करना पसन्द करते हैं, विशेषकर सरकारी नौकरियाँ, जैसे कि शिक्षक, नर्स, पुलिस कांस्टेबल या सेना के जवानों की नौकरी। ये सरकार में प्रवेश स्तर की नौकरियाँ हैं (प्रशासनिक वर्गीकरण के अनुसार ग्रुप सी या ग्रुप डी वाली नौकरियाँ) जो अपेक्षाकृत प्रचुर मात्रा में हैं।

शिक्षा नीति के दस्तावेजों में इस बात का समर्थन किया गया है कि शिक्षा बच्चों को नौकरियाँ पाने के लिए तैयार करती है। नई शिक्षा नीति के लिए सलाह-मशवरे चल रहे हैं और मानव संसाधन विकास मंत्रालय की वेबसाइट में उसके प्रारूप दस्तावेज[1] का दावा है कि, "शिक्षा प्रणाली के उत्पादों की रोजगार क्षमता बढ़ाने को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए'। इसे अकादमिक समर्थन भी प्राप्त है। मानव पूँजी सिद्धान्त का प्रस्ताव है कि व्यक्ति के स्तर पर, शिक्षा एक निवेश है, जो भविष्य में बढ़ी हुई आय के रूप में भारी मुनाफा दे सकती है। राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो शिक्षा में उच्च निवेश से यह अपेक्षा की जाती है कि भविष्य में उच्च सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) बढ़े। इस प्रकार लोकप्रिय कल्पनाओं में शिक्षा और नौकरी का जुड़ाव काफी मजबूत है। किन्तु जमीनी स्तर की वास्तविकताओं ने मुझे एक अलग कहानी सुनाई।

भीलपुर (नाम बदल दिया गया है) गुजरात के छोटा उदेपुर जिले में 3000 लोगों की आबादी वाला एक गाँव है। यहाँ की प्रमुख आर्थिक गतिविधि है गुजर-बसर लायक कृषि और पश्चिमी भारत के बड़े शहरों जैसे जयपुर, वापी आदि में विभिन्न भवन निर्माण स्थलों में मौसमी मजदूरी। कुछ परिवार गुजरात में राजकोट और उसके आसपास कपास के खेतों में मौसमी साझा खेती भी करते हैं। स्थानिक रूप से गाँव को फलिया में नियोजित किया जाता है- फलिया यानी एक सामान्य पैतृक भूमि पर विस्तारित परिजनों का एक घर। परिवारों का भूमि पर अधिकार बहुत कम है, हर परिवार के पास औसतन 1-2 एकड़ जमीन होती है जो पीढ़ी दर पीढ़ी पुरुष उत्तराधिकारियों के बीच विभाजित होते-होते घटती जाती है। जमीन पर जो खेती की जाती है वह मुख्य रूप से अपने प्रयोग के लिए होती है और यह नकद आय का एक छोटा स्रोत है। भवन निर्माण स्थलों में मौसमी मजदूरी ही अन्य सभी जरूरतों को पूरा करने के लिए आय का प्रमुख स्रोत है और ऐसे स्थलों में काम करने वाले अधिकांश युवा (15 से 40 वर्ष के) साल में कम से कम कुछ महीनों के लिए अपने घरों से दूर रहते हैं। अधिकांश परिवार अपने बच्चों के लिए नौकरी, खासकर सरकारी नौकरी की कामना करते हैं। इसे गरीबी से छुटकारा पाने का तरीका और गुजर-बसर लायक कृषि पर निर्भर जीवन की अनिश्चितताओं के विरुद्ध बीमा माना जाता है। इसके बावजूद पाँच प्रतिशत परिवार के सदस्य सार्वजनिक या निजी क्षेत्रों में वेतनभोगी कर्मचारी हैं और जैसी कि आगे चर्चा की जाएगी, इस बात की सम्भावना कम ही है कि उन्हें वेतनभोगी नौकरियाँ मिलें।

इस गाँव में चार विद्यालय हैं : एक निम्न प्राथमिक विद्यालय (कक्षा 1-5); एक उच्च प्राथमिक विद्यालय (कक्षा 1-8); एक आवासीय आश्रम विद्यालय (कक्षा 1-8) और एक नया खोला गया मॉडल विद्यालय (कक्षा 6-12)। माध्यमिक विद्यालय की पढ़ाई जारी रखने वाले कई विद्यार्थी छोटा उदेपुर के माध्यमिक विद्यालय में जाते हैं। पिछले साल छोटा उदेपुर तालुक (ब्लॉक) में माध्यमिक शिक्षा में दाखिला लेने वाले लगभग 50% बच्चों ने एस.एस.सी. परीक्षा उत्तीर्ण की और उनमें से जो विद्यार्थी उच्च माध्यमिक विद्यालय में गए उनमें से 33% ही एच.एस.सी. परीक्षा उत्तीर्ण कर पाए। तो जो विद्यार्थी माध्यमिक विद्यालय में गए, उनमें से केवल 17% ही इसे पूरा करने में सफल हो पाए। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि कई बच्चे माध्यमिक शिक्षा तक पहुँच ही नहीं पाते, यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में माध्यमिक शिक्षा पूरा करने की प्रतिशतता दर एक अंकीय होने की सम्भावना है और उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले तो इससे भी कम हैं। इसका मतलब यह हुआ कि कई सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में, जहाँ नौकरी की

---

[1] प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2016 के लिए कुछ इनपुट

न्यूनतम योग्यता एस.एस.सी. और एच.एस.सी. होती है, वहाँ इस क्षेत्र के युवा लोगों को नौकरी मिलने की कोई सम्भावना ही नहीं है।

यदि नौकरियों की उपलब्धता को देखें तो स्थिति उतनी ही निराशाजनक है। यहाँ आसपास के क्षेत्र में अधिक उद्योग या ऐसी नौकरियाँ नहीं हैं जिनसे कमाई की जा सके। स्थानीय रूप से उपलब्ध नौकरियों में से अधिकतर ऐसी नहीं जिन पर आश्रित हुआ जा सके और वहाँ वेतन भी अच्छा नहीं है जैसे डोलोमाइट पत्थर तोड़ना या रेत उत्खनन जैसे काम। वैसे तो अनुसूचित जनजातियों के वर्ग के तहत सकारात्मक कार्रवाई के कारण समुदाय के सदस्यों को इन नौकरियों में आरक्षण प्राप्त है, लेकिन इसके बावजूद प्रतिष्ठित सरकारी नौकरियों के अवसर बहुत सीमित हैं। नतीजतन, अक्सर वे प्रतिकूल परिस्थितियों में अनौपचारिक क्षेत्र की नौकरियों का सहारा लेते हैं, जब भी वे उपलब्ध हों। उनके पास नौकरियों के लिए सबसे व्यावहारिक विकल्प यह होता है कि वे भवन निर्माण के लिए शारीरिक श्रम करने बड़े शहरों में चले जाएँ क्योंकि औपचारिक क्षेत्र की नौकरियाँ, फिर चाहे वे सरकारी हों या निजी क्षेत्र की, इतनी कम हैं कि अधिकांश उम्मीदवारों को ये मिल नहीं पातीं। गाँव के भीतर कौशल आधारित स्व-रोजगार की गुंजाइश के बारे में ज्यादा पता नहीं लगाया गया है, लेकिन इस बात की सम्भावना कम ही है कि यह आजीविका का एक प्रमुख स्रोत बन पाएगा। आखिर इस गाँव में मुट्ठीभर बिजली-मिस्त्री (इलेक्ट्रिशियन) और नलसाज (प्लम्बर) की ही जरूरत तो पड़ेगी, जबकि रोजगार चाहने वाले युवाओं की संख्या बहुत अधिक है। यहाँ के अधिकांश परिवार रोज कमाकर खाने वाले परिवार हैं, एक छोटे कारोबार की शुरुआत के लिए आवश्यक पूँजी जुटा पाना उनकी पहुँच के बाहर है। इस सबके बीच शिक्षित युवा गुजर-बसर लायक कृषि से भी दूर होते जा रहे हैं, जिसने परम्परागत रूप से श्रम बाजार की अनिश्चितताओं से परिवारों को बचाए रखा है।

इस स्थिति के बारे में आम प्रतिक्रिया यह है कि युवाओं या उनके परिवारों को दोषी ठहरा दिया जाता है कि उन्होंने शिक्षा को गम्भीरता से नहीं लिया। या फिर शिक्षा प्रणाली पर आरोप लगा दिया जाता है कि उसने अच्छी तरह से कार्य नहीं किया, ‘गुणवत्तापूर्ण’ शिक्षा नहीं दी। इस स्थिति के बारे में अक्सर यह कहा जाता है कि युवाओं में जो कौशल है और उद्योग जो चाहता है - ये दोनों बातें बेमेल हैं। इन दावों में कुछ सच्चाई तो है लेकिन यह अधूरी कहानी है।

यहाँ तक कि उच्च शिक्षा प्राप्त युवा पुरुष व महिलाएँ भी रोजगार पाने में असमर्थ हैं और अगर उन्हें नौकरी मिलती भी है तो वह कदाचित अनौपचारिक क्षेत्र में होती है। कुछ अनुमानों के अनुसार भारत में 90% से अधिक नौकरियाँ अनौपचारिक क्षेत्र में होती हैं। एक के बाद एक आने वाली सरकारें नौकरी सृजन की जो बयानबाजी करती रहती हैं उनका कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकला है। वास्तव में हम बढ़ती हुई बेरोजगारी[2] की परछाई को साफ देख रहे हैं, जहाँ मशीनीकरण के कारण उद्योग में अधिक लोगों की जरूरत ही नहीं पड़ती। मुनाफा कमाने वाले पूँजीवादी उद्यम रोजगार का सृजन करने के प्रति उदासीन हैं। अगर उनके पास कोई विकल्प हो तो वे कम से कम रोजगार से अपना काम चला लें - बशर्ते कि उससे अधिकतम लाभ होता हो और कार्य करने में आसानी हो। क्लीस (2014)[3] एक शक्तिशाली तर्क देते हुए कहते हैं कि,‘ रोजगार श्रमिक आपूर्ति की समस्या नहीं है, वरन पूँजीवाद की संरचनात्मक समस्या है। इस ग्रह पर दो अरब या उससे अधिक बेरोजगार या अवनियोजित (under & employed) लोग हैं, ऐसा इसलिए नहीं कि वे कार्य-कुशल नहीं है, लेकिन इसका कारण यह है कि पूर्ण रोजगार न तो पूँजीवाद का लक्षण है और न ही लक्ष्य। यह स्थिति विशेष रूप से उपनिवेशोत्तर देशों जैसे भारत में विकट है क्योंकि यहाँ का जनसांख्यिकीय और आर्थिक परिदृश्य पश्चिम के विकसित देशों से काफी भिन्न है।

इस बीच, आजीविका और निर्वाह के पारम्परिक तरीकों को छोड़ देना एक अनुभवजन्य वास्तविकता है। जब मैंने सामुदायिक नेताओं और स्थानीय प्रशासन के साथ बातचीत की तो इस विश्लेषण की पुष्टि हुई। जब उनके साथ अनौपचारिक रूप से बात होती थी तो वे सामान्य बुद्धि के हिसाब से इस धारणा को दोहराते कि नौकरियाँ पाने के लिए शिक्षा अच्छी है, लेकिन जब भी मैं उनके साथ गम्भीर चर्चा करता तो वे मानते थे कि नौकरियाँ मिलना बहुत कठिन है, लगभग असम्भव है और शिक्षा से नौकरियाँ पाने में मदद नहीं मिल रही। समुदाय के एक सदस्य ने शिक्षित बेरोजगार लोगों के लिए तो यहाँ तक कहा कि इन लोगों के पास अधपकी शिक्षा (गुजराती में

---

[2] उदाहरण के लिए को हिन्दुस्तान टाइम्स में 15 मार्च,2017 को छपा लेख ‘इण्डिया मस्ट बी केयरफुल : जॉबलेस ग्रोथ केन लीड टू सोशल अनरेस्ट’ देखें।

[3] सलीम वैली और एन्वर मोटाला द्वारा लिखित ‘एजुकेशन, इकोनोमी एण्ड सोसायटी’ से उद्धरित।

अधकचरू भनेला) है जिसके चलते ये लोग न तो खेतों में काम करते हैं और न ही शारीरिक श्रम जैसे कि मजदूरी आदि करते हैं। ऐसे ही लोगों से शराब तस्करी या स्थानीय राजनेताओं की चाकरी करने वाला काम बहुत आसानी से करवाया जाता है।

अगर हालत ऐसी है तो फिर शिक्षा एवं रोजगार के सम्बन्ध का पुनर्मूल्यांकन गम्भीरतापूर्वक किया जाना चाहिए। यहाँ इस बात को स्पष्ट कर देना उचित होगा कि इसका मतलब यह नहीं है कि नौकरियों के सृजन या कौशल विकसित करने के प्रयासों को छोड़ने की माँग की जा रही है, यह तो एक अनुरोध है कि केवल इसी पर भरोसा करना ठीक नहीं क्योंकि इसकी अपनी सीमाएँ हैं; अतः इन सीमाओं और इस दृष्टिकोण पर आँख मूँदकर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए- उसके बारे में फिर से विचार किया जाना चाहिए। अब तक 'जनसांख्यिकीय लाभांश' को दूर करने पर जितनी भी बहस हुई है, उसमें पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में नौकरियों पर ध्यान केन्द्रित किया गया। यह प्रासंगिकता की पुरानी बहस का एक नया रूप नहीं है, जहाँ किसी व्यक्ति ने बच्चे को अपने 'जीवन के मुकाम' के लिए शिक्षित कर दिया और इस प्रक्रिया में उसे 'आधुनिक' दुनिया की सम्भावनाओं से वंचित कर दिया। यह तो केवल एक सुझाव है ताकि ऐसी अन्य सम्भावनाओं का पता लगाया जा सके जिन्हें शिक्षा प्रदान कर सकती है और जिनसे युवा समूह का आर्थिक रूप से भला हो सके। यह तो एक निवेदन है कि जो चीज अब तक कारगर रही उसे तब तक बनाए रखें जब तक कि अन्य व्यवहार्य विकल्प उपलब्ध न हों। आजीविका के साथ-साथ नौकरियों पर भी ध्यान दिया जाए। यह कोई नई बहस नहीं है। जब गांधी जी ने नई तालीम का प्रस्ताव रखा था तब उन्हें इस बात का अनुमान था। नई तालीम गांधी जी के ग्राम स्वराज सम्बन्धी दृष्टिकोण से जुड़ी हुई थी। इस गाँव में 1950 में स्थापित आश्रम शाला में इसी गांधीवादी दृष्टिकोण को आत्मसात किया गया लेकिन अब वह कौशल और नौकरियों के वर्तमान विचारों के वशीभूत हो गया है।

वर्तमान काल में Bonaventura de Sousa Santos जैसे विद्वान भी ऐसे विकल्पों की ओर ध्यान देने की बात कहते हैं जो उत्पादन के पूँजीवादी तरीकों से परे नजर डालें और उत्पादन के सहकारी तरीके या हितकारक अर्थ व्यवस्था, वैकल्पिक विकास और विकास के विकल्प खोजने का प्रस्ताव रखें। अगर हमारी शिक्षा नीति को इस सुझाव के अनुसार चलना है तो सबसे पहले जमीनी स्तर की वास्तविकताओं को वैसे ही स्वीकारना होगा जैसी वे हैं और उसके बाद गम्भीरता के साथ यह समझने की कोशिश करनी होगी कि वे किन बारीकियों के साथ वास्तव में सामने आती हैं। भीलपुर तो सिर्फ एक गाँव है - अन्य गाँवों में कुछ अलग चीजें होंगी और शहर में रहने वाले गरीबों के सामने कुछ और मुद्दे होंगे। लेकिन हम इन सबका जवाब तभी दे पाएँगे जब हम उनकी कठिन परिस्थितियों को स्वीकारें और उसे समझने के लिए तैयार हों।

विकास मणियार स्कूल ऑफ एजुकेशन, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में अध्यापक हैं। उनसे vikas.maniar@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल